शिखरजी तीर्थ-दर्शन

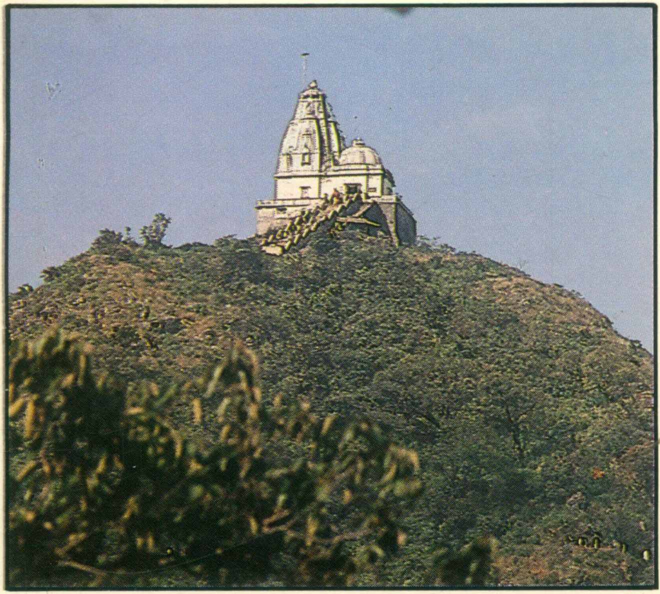

महोपाध्याय ललितप्रभ सागर

महोपाध्याय श्री ललितप्रभ सागर

शिखरजी तीर्थ-दर्शन

[महान् जैन तीर्थ श्री सम्मेत शिखर का ऐतिहासिक परिचय]

प्रकाशक :
श्री जितयशा फाउंडेशन,
सी, एस्प्लानेडरो रूम नं. २८
कलकत्ता ७०० ०६९

जैन म्यूजियम,
पो. शिखरजी (बिहार)
फोन : ०६५३२-३२२५८

प्रेरक : गणिवर श्री महिमाप्रभ सागर जी म.
सम्पादक : श्री प्रकाशकुमार दफ्तरी

मूल्य ५/- रू.

द्वितीय संस्करण १९९६

टाइप सेटिंग :
शर्मा कम्प्युटर, जोधपुर

मुद्रक :
लोढ़ा आफसेट, जोधपुर

गणिवर श्री महिमाप्रभ सागर जी म.

शिखरजी तीर्थ-दर्शन

भारत का अतीत गौरवमय रहा है। दुनिया के दूसरे मुल्क जब अज्ञान के अंधेरे में रास्ते टोह रहे थे, तब इस देश के ऋषि, मुनि, ज्ञानी, साधक लोग सूक्ष्म, गहन चिन्तन की अतल गहराइयों में पहुँच चुके थे। सच तो यह है कि भारत की धरती जीवन के हर पहलू के चिन्तन के लिए सदा उर्वर रही। मात्र इसलिए नहीं कि यहाँ गंगा, यमुना या गोदावरी बहती है। भारत की सम्पदा को बढ़ाने में इनका महत्व तो रहा ही है, परन्तु सबसे ज्यादा गौरव की बात इस देश के लिए यह रही कि यहाँ जनमानस में सहनशीलता, मित्रता, समता का भाव सदा-सदा से रहा है। यही कारण है कि यहाँ वैदिक, जैन और बौद्ध संस्कृति अलग-अलग स्तर पर पनपी और विश्व में फैली। अगर हम सिर्फ जैन धर्म पर ही दृष्टि डालते हैं तो जहाँ तक इतिहास की पहुँच है यह धर्म और इसके तीर्थंकर मानवीय संस्कृति के विकास के लिए सदा कृत्संकल्प दिखायी देते हैं।

जैन धर्म : मानवता को समर्पित अभियान

जैन धर्म जो सदैव विश्व कल्याण के लिए समर्पित रहा है, विश्व के ग्लोब में चाहे जैसे रंग बदले हों लेकिन इसने इन रंगों को नजर

अंदाज करते हुए सदैव पृथ्वी वासियों को शांति और प्रेम का संदेश दिया है। आज हम विश्व की जो व्यवस्थाएं देख रहे हैं, एक युग ऐसा भी था, जब यह सब कुछ नहीं था। मानव-जाति न केवल आध्यात्मिक दृष्टि से अपितु जीवन की अन्य व्यवस्थाओं से भी अविकसित थी। यह विश्व कैसे विसरा पायेगा तीर्थंकर ऋषभदेव को जिन्होंने मानव-जाति को जीवन जीने का सुव्यवस्थित मार्ग दिया। जिस विकसित युग में आज हम रह रहे हैं, उसके विकास का सबसे बड़ा श्रेय भगवान ऋषभदेव को है। उन्होंने मानवता को एक ओर जहाँ आध्यात्मिक उन्नति की प्रेरणा दी, वहाँ दूसरी ओर लोक-जीवन के बहुमुखी विकास में भी मार्गदर्शन दिया।

तीर्थंकर नेमि की करुणा, पार्श्व की ज्ञानमूलक साधना एवं महावीर की अहिंसा, जैन तीर्थंकरों का भारतीय संस्कृति को वह अवदान है जिसकी प्रशंसा विश्व स्तर पर की जानी चाहिये। तीर्थंकर ऋषभ से महावीर तक धर्म और अध्यात्म का वह अविच्छिन्न प्रवाह है जिसमें सदाचार और सद्विचार की गंगा यमुना समवेत बहती है।

तीर्थंकर और तीर्थ

तीर्थंकर और तीर्थ — दोनों ही अन्योन्याश्रित हैं। जो महापुरुष तीर्थ-प्रवर्तन करता है वह तीर्थंकर है और जहाँ तीर्थंकरों का जन्म, दीक्षा,

कैवल्य या मोक्ष हो, वह तीर्थ। तीर्थंकर जिस तीर्थ का प्रवर्तन करते हैं वह संघ से सम्बन्धित है। श्रमण-श्रमणी, श्रावक-श्राविका – ये इस संघ-तीर्थ के चार स्तम्भ हैं, जिस पर संघ-तीर्थ का भव्य शिखर खड़ा होता है। जिन तीर्थों की हम आराधना/उपासना करते हैं उनका निर्माण संघ करता है। प्राय: प्रत्येक महापुरुषों का निर्वाण स्थल उनके आराधकों के लिए तीर्थ रूप होता है। तीर्थंकरों के निर्वाण के पश्चात् श्रद्धालु भक्तों ने उस स्थान को तीर्थ रूप स्वीकार किया जहाँ उनकी आभा के कुछ कण विकीर्ण हैं।

जैन धर्मानुयायी सदैव तीर्थ निर्माण एवं संरक्षण के प्रति सजग रहे हैं। उन्होंने इसके लिए समय-समय पर लाखों-करोड़ों खर्च किये हैं। और तो और परिस्थितियों से सामना करते हुए तीर्थ-रक्षा के लिए अपना सर्वस्व बलिदान भी किया है। किसी भी स्थान का निर्मलीकरण तीर्थंकरों के द्वारा होता है और वहाँ तीर्थ स्थापना भक्तों द्वारा होती है। कभी जहाँ तीर्थंकरों के चरण पादुकाएं थीं, आज वहाँ राणकपुर, देलवाड़ा, पालीताना, गिरनार जैसे भव्यतम मंदिर हैं। श्रद्धा-भावनाओं ने पत्थरों को भी ऐसा पिघलाया है कि इन तीर्थों में स्थापत्य का हमें ऐसा अनोखा भण्डार प्राप्त होता है जिसे निहार कर हम अपने अतीत के लिए गौरवान्वित हो सकते हैं। ये पावन तीर्थ एक ओर सौन्दर्य और शिल्पकला के अनुपम भण्डार हैं, वहीं दूसरी ओर आत्मा को उन्नत और

निर्मल बनाने के साधन हैं। ये पूजनीय तीर्थ ही तो हमें बता रहे हैं कि हमारा अतीत कितना वैभवशाली था और लोग परमात्मा के श्री चरणों में कितना कुछ समर्पित किया करते थे।

एक युग था, जब आत्म साधक महापुरुषों ने उच्च पर्वतमालाओं में, मनोरम घाटी और उपत्यकाओं में—गम्भीर गुफाओं में गहन साधना की, मर्त्य में से अमर्त्य को खोजा, नश्वर में अनश्वर को निहारा और परम सत्ता को आत्मसात् किया। वे साधना-स्थल ही आज हमारे लिए आराध्य तीर्थ बन गये हैं। तीर्थ-भूमियां हमारे लिए सिर्फ पर्यटन तक ही सीमित नहीं हैं यहाँ वह सब कुछ है जिसे पाकर मनुष्य कोलाहल भरी विषैली जिंदगी में शांति की कुछ अमृत बूंदे प्राप्त करता है।

जैन-तीर्थ भारत के कोने-कोने में हैं। दक्षिण के सागर के छोर से ठेठ हिमालय के पर्वत शिखरों तक जैन तीर्थ, मंदिर और शिखर विद्यमान हैं। जैन श्रावकों ने अपनी श्रद्धा के सामने कभी कोई रुकावट पैदा नहीं होने दी और समय-समय पर तीर्थों का निर्माण और जीर्णोद्धार करवाते रहे। जब हम सम्पूर्ण भारतवर्ष के जैन तीर्थों को एक नजर से निहारते हैं तो सम्मेत शिखर हमारे हृदय में अनायास मूर्त रूप धारण कर लेता है।

एक महान तीर्थ सम्मेत शिखर

सम्मेत शिखर और शत्रुंजय भारत वर्ष के सम्पूर्ण जैन तीर्थों में प्रमुख हैं। पश्चिमी भारत के शिखर पर शत्रुंजय तीर्थ है और पूर्वी भारत में सम्मेतशिखर। किसी एक तीर्थंकर के, किसी एक कल्याणक से जब कोई भूमि तीर्थ बन जाया करती है, तब उस तीर्थ की पावनता और शक्ति का आकलन करना तो मानव-बुद्धि के लिए असम्भव होगा, जहाँ बीस-बीस तीर्थंकरों ने निर्वाण की अखण्ड ज्योति जलाई हो। यद्यपि निर्वाण की पहली ज्योति अष्टापद (हिमालय) में जली थी लेकिन आज हमारे लिए वह तीर्थ अदृश्य है। ऐसी स्थिति में सम्मेत-शिखर वह तीर्थ है, जिसे हम निर्वाण की आदि ज्योति का शिखर कह सकते हैं। सच तो यह है कि निर्वाण की सर्वोच्च ज्योति ही सम्मेत-शिखर है। तीर्थंकर ऋषभदेव, वासुपूज्य, नेमिनाथ और महावीर को छोड़कर जैन धर्म के बीस तीर्थंकरों ने यहाँ निर्वाण प्राप्त किया।

महोपाध्याय श्री चन्द्रप्रभ सागर के शब्दों में 'सम्मेत-शिखर वह सशक्त स्थान है, जहाँ बीस-बीस तीर्थंकरों ने देहोत्सर्ग किया है। पर्वत-शिखरों पर देहोत्सर्ग करने की जैनों में अपनी सिद्धान्त-सिद्ध परम्परा रही है। समाधि का यह रूप वास्तव में निरवद्य संल्लेखना है।प्रश्न स्वाभाविक है कि बीस-बीस तीर्थंकरों ने अपने देहोत्सर्ग के

लिए, अन्तिम समाधि के लिए सम्मेत शिखर को ही क्यों चुना? हकीकत में इसके पीछे बड़ा मनोवैज्ञानिक तथ्य है। हर तीर्थंकर ने अपनी चैतन्य-विद्युत् धारा से उस शिखर को चार्ज किया है। एक तीर्थंकर ने वहाँ अपनी समाधि लगायी। उनके हजारों वर्षों बाद हुए दूसरे तीर्थंकर और दूसरे के बाद तीसरे, यों पूरे बीस तीर्थंकरों ने वहाँ निर्वाण प्राप्त किया। इस प्रकार हर तीर्थंकर ने उस घनत्व-शक्ति को सचेतन करने का प्रयास किया। एक तीर्थंकर की विद्युत धारा क्षीण होती, तब तक दूसरे तीर्थंकर ने पुनः उसे अभिसिंचित कर दिया। लाखों वर्षों से वह स्थान स्पन्दित, जागृत और अभिसिंचित होता रहा। चेतना की ज्योति वहाँ सदा अखण्ड बनी रही। निसर्गतः यह कल्पना की जा सकती है कि सम्मेत-शिखर कितना अद्‌भुत, अनूठा, जागृत पुण्य क्षेत्र है।'

सम्यक्त्व का शाश्वत शिखर

सम्भव है कि भारत के नक्शे से यह तीर्थ-भूमि अनेक बार धूमिल हुई, समय की मार ने इसके मंदिरों को भी कई दफा ध्वस्त किया लेकिन इसकी पवित्रता और लोकप्रियता को कभी कोई खतरा नहीं पहुँचा। यह शिखर उन शिखरों-सा नहीं है, जहाँ से लुढ़क कर मनुष्य जीवन समाप्त करता है। यह सम्यक्त्व का वह शाश्वत शिखर है, जहाँ पहुँच कर व्यक्ति जीवन की गगनचुम्बी ऊंचाइयों को आत्मसात् करता है।

शत्रुंजय तीर्थ, जहाँ किसी एक भी तीर्थंकर का निर्वाण नहीं हुआ, वह इतना आदरणीय और पूजनीय है, तो सम्मेत-शिखर की महिमा का वर्णन किसी मुख/लेखनी से कहाँ सम्भव है? निश्चित रूप से भगवान महावीर के पाँच सौ वर्ष बाद अगर बिहार को दुष्काल का सामना न करना पड़ता, जैन अनुयायी उस प्रदेश का त्याग कर अन्यत्र न जाते और मध्यकाल में इसे कट्टर पंथी विध्वंसकारी लोगों का सामना न करना पड़ता तो आज इस तीर्थ का स्वरूप तिरुपति, वैष्णो देवी और शत्रुंजय से कम नहीं होता लेकिन हमें इस बात का कोई विशेष खेद नहीं है क्योंकि भक्त की भावना किसी मंदिर की मूर्ति या शिखर पर लहराते हुए ध्वज को देखकर ही प्रफुल्लित नहीं होती है, वह तो कंकर में भी शंकर को खोज लेती है और निश्चित रूप से मध्यकाल में इस तीर्थ का इतना विध्वंस किया गया कि वहाँ दर्शन करने को कुछ नहीं बचा था पर भक्तों ने वहाँ के पत्थरों में ही अपने परमात्मा को खोज लिया।

यह इस भूमि की विशेषता है कि जैसे ही व्यक्ति शिखर की यात्रा करने के लिए अपना पहला कदम तलहटी से आगे बढ़ाता है, हृदय आनन्द से ऐसा सराबोर हो जाता है कि आगे आने वाली थकावट उसे थकावट ही नहीं लगती। चाहे जलमन्दिर हो, चंदाप्रभु की टोंक हो या प्रभु पार्श्व का निर्वाण शिखर, भक्त जहाँ पहुँचे, वहाँ से एक कदम भी आगे बढ़ाने की इच्छा नहीं होती। इससे भी ज्यादा आश्चर्य तो तब होता

है, जब बच्चे, युवा, वृद्ध सब एक साथ एक गति से चलते और बढ़ते हुए दिखाई देते हैं। आठ वर्ष का बच्चा हो या अस्सी साल का वृद्ध, वहाँ दोनों सशक्त हैं। और तो और जो लोग कहीं और सौ कदम भी नहीं चल पाते हैं, उन्हें भी जैन धर्म के इस सर्वोच्च शिखर पर चढ़ाई करते हुए देखा जा सकता है।

वैसे भी निर्वाण की ज्योतियाँ कभी तलहटी में नहीं जला करती। इसे जलाने के लिए तो शिखर तक पहुँचना ही पड़ेगा। हमारा हृदय तब कितना प्रसन्न होता है, जब हम इन पावन शिखरों पर पहुँचते हैं। आंधी, तूफान, झंझावात, तेज हवाएँ सब कुछ चलती हैं। कभी-कभी तो ऐसा लगता है, मानों पूरा शिखर हिल रहा है, तब भी निर्वाण की वे ज्योतियाँ तो अकम्प ही दिखाई देती हैं। कल वह सब कुछ नहीं था जो आज हम देख रहे हैं। सम्भव है कल न भी रहे लेकिन इससे प्रभु की शाश्वत ज्योति की निश्चलता को कहीं कोई खतरा नहीं है। काश ! हम लोग इन ज्योतियों के पास जाकर स्वयं को ज्योतिर्मय कर लें, सम्यक्त्व का दीप जला लें, अपनी अंधकार भरी जिंदगी में प्रकाश की शाश्वत किरणों को प्राप्त कर लें। चाहे अधिष्ठायक देव भोमियां के चमत्कार हों, चंदन वनों की खुशबु हो या मोती जैसे दिखाई देने वाले कंकर हो, आखिर सारी महिमा उन्हीं ज्योतिर्मय महापुरुषों की है, जिनसे आज न केवल जैन धर्म अपितु सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित हो रहा है। सम्मेत शिखर तीर्थ की

महिमा के सम्बन्ध में पंडित विजय सागर की दो पंक्तियां उल्लेखनीय है—

'अधिको ए गुरु शिखर अहो, शत्रुंजय थी जाण्यो जी ।'

सम्मेत-शिखर का वायु मंडल आज भी एक पवित्रता लिये है । इस पर्वत की यह अपनी विशेषता है कि यह अपने पर स्थित विशाल चंदन वन के सुंगधित वृक्षों से सदा महकता रहता है । बड़ी दुर्लभ कीमती वनौषधियां इस पर्वत पर होती हैं । सचमुच दिव्य पर्वत है यह ।

सम्मेत-शिखर का शाब्दिक अर्थ

सम्मेत-शिखर का सीधा-सा अर्थ है - 'समता का शिखर', लेकिन इससे भी अधिक प्रभावशाली अर्थ इसका यह है कि समता के शिखर पुरुषों ने अपने श्री चरणों का संस्पर्श कर जिसे पवित्र किया हो, समता के शिखर पुरुष जहाँ समवेत रूप में रहे हों, वह सम्मेत-शिखर है । सम्मेत-शिखर का प्राचीन नाम भी समवेत ही था । सम्मेत शब्द दो पदों से बना है - सम्म + एत । अर्थ हुआ, सम्यक् भाव को प्राप्त सुन्दर और प्रशस्त पर्वत ।

सम्मेत-शिखर का सर्वाधिक प्राचीन उल्लेख ज्ञाताधर्म कथा नामक आगम के मल्लिजिन अध्ययन में हुआ है । वहाँ तीर्थंकर मल्लिनाथ के

निर्वाण का वर्णन करते हुए इस पर्वत के लिए दो शब्दों का प्रयोग किया गया है - 'सम्मेय पव्वए' और 'सम्मेय सेल सिहरे'।

कल्पसूत्र के पार्श्वनाथ चरित्र में तीर्थंकर पार्श्व के निर्वाण का वर्णन करते हुए सम्मेत-शिखर के लिए 'सम्मेय सेल सिहरंमि' शब्द अभिहित है।

मध्यकालीन साहित्य में सम्मेत शिखर के लिए समिदिगिरि या समाधिगिरि नाम भी प्राप्त होता है। स्थानीय जनता इस पर्वत को पारसनाथ हिल नाम से सम्बोधित करती है। यह भी उल्लेखनीय है कि इस तीर्थ को श्वेताम्बर परम्परा में सम्मेत शिखर कहा जाता है और दिगम्बर परम्परा में सम्मेद शिखर। इसका मुख्य कारण परम्परा भेद नहीं, अपितु प्राचीन भाषा के भेद का है। श्वेताम्बर परम्परा में अर्धमागधी प्राकृत प्रचलित है और दिगम्बर परम्परा में सौरसेनी। जैसा कि भाषाविद जानते हैं कि सौरसेनी प्राकृत में त का द प्रयोग हो जाता है। इसलिए दिगम्बर परम्परा में सम्मेत को सम्मेद कहा जाता है।

अरिहंतों का निर्वाण-स्थल

निश्चित रूप से यह मानव जाति के लिए सौभाग्य की बात है कि उसे अपने आराध्य के निर्वाण स्थल, दर्शन-पूजन के लिए उपलब्ध हैं। सम्मेत-शिखर की महिमा का मूल कारण यहाँ के चंदन के बगीचे,

चमत्कारी भोमिया, पर्वत की ऊंचाई या तीर्थंकर पुरुषों का विचरण नहीं है, क्योंकि यह सब कुछ तो अन्यत्र भी उपलब्ध हो सकते हैं। सम्मेत-शिखर इसलिये महिमावंत है क्योंकि यहाँ एक नहीं बीस-बीस तीर्थंकर पुरुषों ने जीवन का चरम लक्ष्य—मोक्ष प्राप्त किया है। यह शिखर मात्र पत्थरों का समूह नहीं है अपितु आत्म-विजेता अरिहंतों के ज्योतिर्मय दीपकों का समूह है। अष्टापद, चंपापुरी, गिरनार या पावापुरी इन चार तीर्थों को छोड़कर सम्पूर्ण विश्व में सम्मेत-शिखर ही तो एक पावन धाम है जहाँ तीर्थंकर आत्माओं ने निर्वाण प्राप्त किया। अष्टापद आदि चारों धामों में तो एक-एक तीर्थंकर ने ही निर्वाण प्राप्त किया पर यह वह पुण्य स्थली है जहाँ बीस तीर्थंकरों ने मुक्ति पायी। सम्पूर्ण विश्व में किसी भी धर्म का कोई भी ऐसा तीर्थ नहीं है जहाँ उन धर्मों के बीस-बीस आराध्य पुरुषों ने निर्वाण प्राप्त किया हो। तीर्थंकर ऋषभ, वासूपूज्य, नेमी एवं महावीर को छोड़कर शेष बीस तीर्थंकर—अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दनप्रभु, सुमतिनाथ, पद्मप्रभु, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभु, सुविधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयाँसनाथ, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत स्वामी, नमिनाथ एवं पार्श्वनाथ ने क्रमशः यहाँ आकर जीवन की सांध्यवेला पूर्ण की एवं परम पद मोक्ष प्राप्त किया। इसलिए यह तीर्थ भूमि विश्व के लिए चमत्कार है।

महान चमत्कारी अधिष्ठायक देव

मान्यता है कि जैन तीर्थंकर वीतराग-पुरुष होते हैं। अत: वे न तो प्रसन्न होकर किसी को वरदान देते हैं और न रुष्ट होकर अभिशाप। पर, उन तीर्थंकर पुरुषों के चरण सेवक अधिष्ठायक देव होते हैं जो भक्तों की मनोकामनाएं पूर्ण करते हैं। जैन धर्म में अधिष्ठायक देव के रूप में दो शक्तियां जग प्रसिद्ध हैं - राजस्थान में नाकोड़ा भैरव एवं बिहार में शिखर जी के भोमियाजी।

सम्मेत-शिखर के विशाल पहाड़ पर रात के बारह बजे हो या दिन के, श्रद्धालु यात्रा करते पाये जाते हैं आखिर इन सबकी रक्षा कौन करता है। सब भक्तों का एक ही उत्तर होगा - भोमिया जी महाराज। सचमुच भोमिया जी ही तो वह चमत्कारी शक्ति है जिसके चलते आज तक सम्मेत-शिखर पर्वत पर कोई अशुभ घटना नहीं हो पायी है।

भोमिया जी महाराज तीर्थ रक्षा तो करते ही हैं साथ ही भक्तों की मनोकामनाएं भी पूर्ण करते हैं। ऊंचे-ऊंचे शिखरों की तलहटी में बाबा भोमिया का मनोहारी मंदिर है और ओजस्वी प्रतिमा है। लोग तेल और सिन्दूर से बाबा की पूजा करते हैं और अपनी श्रद्धा बाबा के द्वार पर लुटाते हैं। प्रतिवर्ष लाखों दर्शनार्थी अपनी विविध मनोकामनाएँ लेकर बाबा के द्वार पर आते हैं। अंधों को आंखें मिलना, गूंगों को आवाज

मिलना, रोगी का स्वस्थ होना, चिंतातुर की चिंता दूर होना – पता नहीं कितने-कितने परोपकारी चमत्कार बाबा के द्वार पर हो चुके हैं।

प्रतिवर्ष होली के दिन बाबा के द्वार पर शिखर जी में एक भव्य मेला लगता है। जिसमें देश भर से बाबा के भक्त आकर सम्मिलित होते हैं। लोग भोमिया बाबा से ऐसे घुलमिल जाते हैं कि बाबा के दर्शन की खुशी में जमकर गुलालें उड़ाते हैं और रात भर भक्ति कार्यक्रम चलते हैं।

परम्परागत नियम है कि लोग तीर्थ-यात्रा से पूर्व भोमिया बाबा के दर्शन करते हैं और उनकी मौन स्वीकृति लेकर तीर्थ-यात्रा करते हैं। जब-जब भी कोई यात्री पहाड़ पर मार्ग भटक जाता है, भयभीत हो जाता है तो भोमिया बाबा मार्गदर्शन करते हैं व सुरक्षा करते हैं।

तीर्थ-विकास के चरण

सम्मेत-शिखर तीर्थ के इतिहास के आदि स्रोत को ढूंढ़ पाना शायद ना-मुमकिन सा है। इतिहास के झरोखे में अगर नजर भी डाली जाये तो लम्बी दूरी तक दृष्टिपात नहीं हो पाता है। वैसे गिरिराज हमारे श्रद्धा के लिये जितना बहुमूल्य है उतना किसी इतिहासज्ञ के लिए नहीं हो सकता। श्रद्धा कभी इतिहास को नहीं खोजा करती। पर जब एक भक्त गिरिराज की यात्रा करता है और वहाँ के वैभव को निहारता है, तो स्वतः

पूर्वजों के लिए ‘वाह !’ शब्द निकलता है और दिल कहता है, ‘उन्होंने कितना कुछ किया है।’ ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि आखिर वे कौन थे !

निश्चित रूप से आज हम जैसा जिस रूप में सम्मेत-शिखर को निहार रहे हैं उसका अतीत उससे भी अधिक वैभवशाली रहा होगा। समय की मार तो सब पर प्रभावी होती है, ऐसा चलते निश्चित रूप से अब तक कई दफा यहाँ नींव को ईंटें लगी हैं, शिखर पर ध्वज लगा है और आंगन में अनगिनत दीप जले हैं।

जैन परम्परा इस तीर्थ के इतिहास को अनगिनत वर्षों से जोड़ती है। इसका अतीत तीर्थंकर अजितनाथ से प्रारम्भ होता है, निश्चित रूप से तब यह पर्वत आज से कई गुना दीर्घकाय रहा होगा। तीर्थंकर अजितनाथ का यहाँ सर्वप्रथम निर्वाण हुआ। उनके पश्चात् और भी 19 जैन तीर्थंकरों का यहाँ निर्वाण हुआ। निश्चित रूप से उस समय इन तीर्थंकरों के शिष्यों/श्रावकों/भक्तों ने यहाँ अपने श्रद्धेय तीर्थंकरों की स्मृति में भव्यतम जिनालयों का निर्माण कराया होगा। इन सबकी आज हम सिर्फ कल्पना कर सकते हैं क्योंकि इतिहास ने इस सम्बन्ध में हमारे लिए कुछ भी नहीं छोड़ा है।

फिर भी वर्ष-दर-वर्ष अतीत पर जब नजर डालते हैं तो ज्ञात होता है कि दूसरी सदी के विद्यासिद्ध जैन आचार्य श्री पादलिप्त सूरि आकाशगामिनी विद्या द्वारा यात्रार्थ सम्मेत-शिखर आया करते थे। उसी प्रकार प्रभावक जैनाचार्य श्री बप्पभट्ट सूरि भी अपनी आकाशगामिनी विद्या द्वारा यहाँ यात्रार्थ आते थे।

नवीं सदी में आचार्य यशोदेव सूरि के प्रशिष्य श्री प्रद्युम्नसूरि ने लम्बे अर्से तक मगध देश में विहार किया था। इसी क्रम में वे सात बार सम्मेत-शिखर तीर्थ भी पधारे थे। नवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सम्मेत-शिखर धर्मान्धता का शिकार हुआ और वहाँ के सारे मंदिर ध्वस्त कर दिये गये। इसी सदी के अन्त में तीर्थ का जीर्णोद्धार हुआ।

तेरहवीं सदी में आचार्य श्री देवेन्द्र सूरि द्वारा रचित वन्दासवृत्ति में सम्मेत-शिखर तीर्थ के जिनालयों एवं प्रतिमाओं का उल्लेख है। कुंभारिया जी तीर्थ में स्थित प्राचीन शिलालेख से ज्ञात होता है कि आचार्य श्री परमानन्द सूरि के सान्निध्य में श्री शरम देव के पुत्र श्री वीरचन्द ने सं. 1345 में यहाँ जिन मंदिरों की प्रतिष्ठा करवाई थी।

स. 1659 में भट्टारक श्री ज्ञानकीर्ति द्वारा रचित यशोधर चरित्र की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि अकबरपुर के महाराज मानसिंह के मंत्री श्री

नानू ने भी यहाँ जिन मंदिरों का निर्माण करवाया था।

मध्य युग में सम्मेत-शिखर के आधिपत्य के लिए काफी विवाद हुआ था। सम्राट अकबर ने सन् 1592 में आचार्य श्री हीरविजय सूरि के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर यह पर्वत उन्हें भेंट दे दिया था। उक्त आशय का फरमान जैन परम्परा का इतिहास ग्रन्थ में प्रकाशित है। फरमान से ज्ञात होता है कि अकबर ने यह स्थान न केवल भेंट किया था अपितु इसे पवित्र स्थान घोषित कर यहाँ हिंसक कृत्यों पर पूर्णतया निषेध लागू कर दिया था।

'जैन परम्परा का इतिहास' ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि आगरा के श्री कुमारपाल सोनपाल लोढ़ा ने सन् 1670 में यहाँ जिनालयों का जीर्णोद्धार करवाया था।

सन् 1752 में दिल्ली के अठारहवें बादशाह अबु अलीखान बहादुर ने मुर्शिदाबाद के सेठ महताबराय को जगत सेठ की उपाधि से विभूषित किया तथा मधुवन कोठी, जयपार नाला, जलहरी कुंड, पारसनाथ तलहटी पहाड़ उपहार में दिया। इतना ही नहीं बादशाह अबुअलीखान ने सन् 1755 में पारसनाथ पहाड़ को कर मुक्त घोषित कर दिया।

कुछ तीर्थमालाओं से ज्ञात होता है कि सम्मेत-शिखर के निकट झलियां गांव में रघुनाथ सिंह राजा राज्य करता था। उनका दीवान

सोमदास प्रत्येक यात्री से कर के रूप में आठ आना लेता था। कतरास के राजा कृष्णसिंह भी कर लिया करते थे। प्राप्त संदर्भों से ज्ञात होता है कि कभी पालगंज सम्मेत-शिखर पहाड़ी की तलहटी था। यात्रियों को यात्रा करने के लिए सर्वप्रथम पालगंज के राजा से स्वीकृति लेनी पड़ती थी और राजा के सैनिक साथ जाकर यात्रियों को दर्शन कराते थे।

सं. 1805 में मुर्शीदाबाद के सेठ महताब राय जी को दिल्ली के सम्राट बादशाह अहमद शाह ने उनके कार्यों से प्रभावित होकर उन्हें जगत् सेठ की उपाधि से विभूषित किया एवं सं. 1809 में मधुवन कोठी, जय पारनाला, जलहरी कुंड एवं पारसनाथ पहाड़ की तलहटी की 301 बीघा भूमि उपहार में दी। सं. 1812 में बादशाह अबूअलीखान बहादुर ने इस पहाड़ को कर मुक्त घोषित किया था। सेठ महताब राय की यह प्रबल इच्छा थी कि इस पुण्य तीर्थ का जीर्णोद्धार हो। उसी काल में पं. देवविजय गणि का तीर्थ यात्रा के लिए सम्मेत-शिखर तीर्थ पदार्पण हुआ। सेठ महताब राय ने तीर्थ का जीर्णोद्धार कराने का संकल्प गणिवर श्री के सामने अभिव्यक्त किया। गणिवर श्री ने उन्हें उत्साहित किया। सेठ ने अपने सातों पुत्रों को सम्मेत-शिखर बुलवाया और अपनी भावना प्रकट की। सभी पुत्रों ने पिताश्री की भावना का समर्थन किया। सर्व सम्मति से सेठ ने तीर्थ जीर्णोद्धार का कार्यभार अपने चतुर्थ पुत्र श्री सुगालचंद एवं जैसलमेर गद्दी के मुनीम श्री मूलचन्द को सौंपा।

संयोगवशात् जीर्णोद्धार कार्य प्रारम्भ होने से पूर्व ही सेठ श्री महताब राय जी का देहान्त हो गया। सं. 1822 में बादशाह आलम ने उनके पुत्र श्री खुशालचन्द को जगत् सेठ की उपाधि से विभूषित किया।

सेठ खुशालचन्द के नेतृत्व में सम्मेत-शिखर तीर्थ का जीर्णोद्धार कार्य जोरों से चलने लगा, पर उनके लिए यह समस्या सामने आ गयी कि कौन-से तीर्थंकर का कौन-सा निर्वाण स्थल है। इसकी प्रामाणिक जानकारी उन्हें उपलब्ध नहीं हो पायी। जगत् सेठ स्वयं भी कई दफा मुर्शिदाबाद से यहाँ आये, पर वे निर्वाण स्थलों के बारे में निर्णय नहीं कर पाये। ऐसी स्थिति में पंडित देवविजय जी की प्रेरणा से सेठ खुशालचन्द ने अट्ठम तप की आराधना करके भगवान पार्श्वनाथ की अधिष्ठायिका देवी पद्मावती की उपासना की। देवी ने प्रसन्न होकर सेठ को स्वप्न में दर्शन दिये और कहा कि पहाड़ पर जहाँ-जहाँ केशर के स्वस्तिक चिन्ह प्राप्त हों वही निर्वाण स्थल समझना।

सेठ ने कहा, फिर भी यह कैसे ज्ञात होगा कि कौन-से तीर्थंकर की कौन-सी निर्वाण भूमि है।

देवी ने कहा - जिस स्थान पर जितने स्वस्तिक हों, वहाँ उस नम्बर के तीर्थंकर का निर्वाण-स्थल होगा।

इस प्रकार दैविक शक्ति से 20 निर्वाण स्थलों का निर्णय होने पर

वहाँ स्तूप निर्माण किये गये एवं चरण पादुकाएं स्थापित की गयी। इनकी प्रतिष्ठा सं. 1825 माघ शुक्ला तृतीया को आचार्य धर्मसूरि के करकमलों से हुई। इसी जीर्णोद्धार कार्य के अन्तर्गत ही पहाड़ पर जल मंदिर, मधुवन में सात मंदिर, धर्मशाला व पहाड़ के क्षेत्रपाल श्री भोमिया जी के मंदिर का भी निर्माण हुआ एवं प्रतिष्ठा हुई।

मंदिर का प्रबन्ध कार्यभार श्री जैन श्वे. श्री संघ को सौंपा गया। लेकिन पहाड़ की ऊंचाई अधिक होने के कारण भयंकर तूफान, के चलते जगत् सेठ द्वारा निर्मापित स्तूप कुछ वर्षों में जीर्ण हो गये। अतः वि.सं. 1925 से 1933 तक इस तीर्थ का पुनः जीर्णोद्धार का कार्य हुआ। उस समय श्री जिनशान्तिसागरसूरि, जिनहंससूरि और जिनचन्द्रसूरि के करकमलों से पुनः प्रतिष्ठा हुई। इस जीर्णोद्धार के अन्तर्गत ही भगवान आदिनाथ, भगवान वासुपूज्य, नेमिनाथ, महावीर तथा शाश्वत जिनेश्वर श्री ऋषभानन, चंद्रानन, वारिषेण, वर्धमान आदि की नई देहरियों का भी निर्माण हुआ।

कालचक्र के प्रवाह में पर्वत पर एक संकट और आया। पालगंज के राजा ने पहाड़ को विक्रय करने की घोषणा कर दी। यद्यपि यह सम्पूर्ण पहाड़ जगत् सेठ को भेंट स्वरुप प्राप्त हुआ था पर कुछ कारणवशात् पालगंज के राजा के अधिकार में आ गया। सन् 1905-10 के बीच राजा को किसी कार्यवश धन की आवश्यकता हुई। राजा ने पहाड़ विक्रय की

सार्वजनिक घोषणा की। सूचना पाकर कलकत्ता के सेठ रायबहादुर श्री बद्रीदास जौहरी एवं मुर्शिदाबाद के श्री बहादुरसिंह दूगड़ ने भारतीय स्तर की श्वेताम्बर संस्था आनन्द जी कल्याणजी की पेढ़ी को यह पहाड़ क्रय करने का संकेत दिया। दोनों पुण्य पुरुषों के सक्रिय सहयोग से पेढ़ी ने यह पहाड़ 9-3-1918 को दो लाख बयालीस हजार रुपये में क्रय कर लिया और सूचारु रूप से तीर्थ का विकास प्रारम्भ हुआ।

सं. 1980 में आगमोद्धारक आचार्य श्री सागरानन्द सूरि का यहाँ यात्रार्थ पदार्पण हुआ। आचार्यश्री तीर्थ के दर्शन कर आनन्दित हुए और तीर्थ का जीर्णोद्धार करवाने की इच्छा जगी। उनके समुदाय की साध्वी श्री सुरप्रभा श्री के अथक प्रयासों से स. 2012 में इस तीर्थ का पुनः जीर्णोद्धार प्रारम्भ हुआ जो स. 2017 में पूर्ण हुआ। यह इस तीर्थ का तेइसवां उद्धार था। आज हम तीर्थ पर जो कुछ देख रहे हैं वह इसी जीर्णोद्धार कार्य का अन्तिम रूप है।

शिखर-यात्राः दर्शन-दिग्दर्शन

इस पवित्र तीर्थ धाम की यात्रा हमारा अहोभाग्य है। यही तो वह पर्वत है जिसके कण-कण में सिद्धत्व की आभा है, निर्वाण की ज्योति है। असंख्य वर्षों से मानव जाति ने इसका पूजन-अर्चन कर जीवन को ज्योतिर्मय किया है। यहां का कंकर-कंकर तीर्थंकर पुरुषों के चरण स्पर्श

से पवित्र है । यात्रा के समय हृदय में जो हर्षोल्लास, प्रफुल्लता और सहज आनन्द की उपलब्धि होती है वह अन्यत्र दुर्लभ है । इस पावन तीर्थ की यात्रा संकटहारी, पुण्यकारी और पापनाशिनी है ।

सम्मेत-शिखर पर्वत समस्त जैन तीर्थों में सबसे ऊंचा पर्वत है और दुर्गम भी । इसकी यात्रा के लिए सितम्बर से मार्च का समय उचित रहता है । पहाड़ की यात्रा के दौरान 27 कि.मी. पदयात्रा करनी पड़ती है । 9 कि.मी. चढ़ाई, 9 कि.मी. परिभ्रमण—तीर्थ पर दर्शन वन्दन और 9 कि.मी. उतराई । यात्रा के समय अगर आप उपवास कर रहे हैं तो प्रशंसनीय है । अन्यथा मार्ग के लिए भोजन-नाश्ता व्यवस्था साथ लेना उचित रहता है ताकि आवश्यक होने पर उपयोग किया जा सके । वैसे पीने का पानी पहाड़ पर अनेक स्थलों पर उपलब्ध है तथापि साथ ले जाना लाभकारी रहता है । साथ में सहारे के लिए मजबूत लकड़ी/डंडा भी ले लें । वृद्ध लोगों के लिए डोली की व्यवस्था भी उपलब्ध रहती है । निर्धारित दर से डोलियां प्राप्त हो जाती हैं । वैसे उचित यह रहता है कि डोली यात्रा से पूर्व रात्रि में ही तय कर ली जाये ।

दिगम्बर लोग रात्रि में यात्रा करते हैं और श्वेताम्बर दिन में । वैसे सुरक्षा की दृष्टि से दिन में यात्रा करना उचित रहता है । यात्रा प्रारम्भ करने का उचित समय गर्मी में प्रातः 4 बजे एवं सर्दी में प्रातः 5 बजे होता है ।

स्नानादि से निवृत्त होकर मौसम अनुसार वस्त्र साथ में ले लें और सबसे पहले श्री भोमियाजी महाराज के मंदिर में पहुँचकर निर्विघ्न यात्रा के लिए उन्हें धोक लगायें और श्रीफल समर्पित करें। श्री भोमियाजी अप्रत्यक्ष रूप में अपने भक्तों के साथ रहते हैं और उनकी सुखद यात्रा के लिए सहायक होते हैं। भोमिया जी के मंदिर से बाहर आकर स्वयं को यात्रा के लिए संकल्पबद्ध करें और प्रभु का जयकारा करते हुए यात्रा प्रारम्भ करें। अगर आप एकाकी हैं तो नवकार मंत्र या उवसग्गहरं का जाप करते हुए यात्रा करें और यदि समूह में हैं तो प्रभु भक्ति के गीत गाते हुए। ऐसा करके आप यात्रा में अधिक आनन्द प्राप्त कर सकेंगे और थकावट महसूस नहीं होगी। गिरिराज विश्व का सबसे पवित्रतम स्थल है, अतः इसकी आशातना/अवहेलना न हो इसका विवेक रखना हमारा नैतिक दायित्व है।

आप कुछ ही कदम चलेंगे कि गिरिराज की तलहटी पर पहुँच जाएंगे। कृपया यहाँ भी धोक लगायें, गिरिराज को, गिरिराज पर सिद्धत्व प्राप्त सिद्धात्माओं को। यह आपके जीवन की एक अहो वेला है जब आप गिरिराज की यात्रा कर रहे हैं - स्वागत है इस सौभाग्य का, पुण्य वेला का।

तलहटी पर पार्श्वनाथ भगवान की जय बोलकर कदम आगे

बढ़ायें। यहाँ से ऊपर चढ़ने के लिए संकरी, पर व्यवस्थित पत्थर बिछी सड़क है। चढ़ते समय ऐसा अनुभव होगा जैसे गतिमान सर्प की तरह सड़क आड़ी-तिरछी चल रही है। अब तक आप करीब 3 कि.मी. चले हैं। सांस भरने लगा है, विश्राम की इच्छा हो रही है। आपके विश्राम के लिए सुरम्य स्थली गंधर्वनाला आ गया है। चारों ओर हरे-घने वृक्ष है, और बीच से नाला साफ स्वच्छ शीतल जल लिए बह रहा है।

यहाँ भयंकर गर्मी में भी पानी नहीं सूखता है। इसका जल काफी पाचक माना जाता है। इसे गंधर्वनाला क्यों कहा जाता है इसका प्रामाणिक जवाब तो नहीं दिया जा सकता, पर इतना अवश्य है कि ऐसे स्थानों पर गंधर्वदेवों का आवागमन होता रहा होगा। देव यहाँ शांत सुरम्य वातावरण में अपना दिव्य संगीत छेड़ते रहे होंगे अतः इसका नाम गंधर्वनाला हो गया।

गंधर्वनाले पर श्वेताम्बर जैन धर्मशाला भी है। अगर थकावट महसूस कर रहे हैं तो यहाँ पांच-दस मिनट विश्राम कर सकते हैं। नीचे पेढ़ी की ओर से यहां गर्म जल (पीने के लिए) की भी व्यवस्था रहती है एवं सभी यात्रियों के लिए भाते की भी।

मदिर-मदिर बयार ने फिर से आपको तंदुरुस्ती दी है। अपना संकल्प दृढ़ कीजिये और प्रभु पारसनाथ की जय बोलते हुए आगे की

यात्रा प्रारम्भ कीजिये। यहां से चढ़ाई कठिन है। लेकिन अपने संकल्प को शिथिल न होने दें। श्रद्धा के सामने कुछ भी अशक्य नहीं होता। श्रद्धा ही तो वह आधार है जिसके सहारे व्यक्ति परमात्म-तत्त्व को उपलब्ध करता है। श्रद्धा का ही तो यह प्रभाव है कि साठ-सत्तर वर्ष के वृद्ध भी प्रभु की जय बोलते हुए चढ़े जा रहे हैं।

आप प्रभु भक्ति के गीतों को न रोकें। सच तो यह है कि भजनों को गाते-गाते आप कब शिखर पर चढ़ जायेंगे पता भी नहीं लगेगा। आप कुछ दूर चले हैं कि दो मार्ग आ गये हैं। बायें हाथ का मार्ग गौतम स्वामी की टूंक का है और दायें हाथ का मार्ग पारसनाथ टूंक का। चढ़ते समय गौतम स्वामी टूंक जाना और उतरते समय पारसनाथ टूंक से आना उचित रहता है।

गौतम स्वामी की टूंक के मार्ग में आगे जाने पर कल-कल मधुर संगीत की स्वर लहरी देता हुआ सीतानाला मिलेगा। नाले के साफ-स्वच्छ पानी को देखकर ऐसा लगता है कि जैसे सीता की पवित्रता साथ लिये बह रहा हो। यहाँ से आगे का चढ़ाव कुछ अधिक कठिन है, पर सीढ़ियां बनी है अतः आप धीरे-धीरे इसे भी पार कर लेंगे।

आप लगभग 500 सीढ़ियां चढ़कर पार करेंगे कि कुछ समतल भूमि में पहुँचेंगे। वहाँ चारों ओर निर्मित तीर्थंकरों की टूंकों/देहरियों को

देखकर आपका दिल बाग-बाग हो जाएगा। चारों ओर प्रभु की टूंके हैं। हर टूंक समता का शिखर है। सचमुच धन्य हैं वे तीर्थंकर पुरुष जिन्होंने यहाँ निर्वाण प्राप्त किया, धन्य हैं वे लोग भी जिन्होंने इन देहरियों का निर्माण किया है और धन्य हैं वे आंखें जो इन्हें निहारकर कृत्कृत्य हो रही हैं।

दर्शन यात्रा प्रारम्भ करने पर आप सर्वप्रथम लब्धि-निधान गणधर श्री गौतम स्वामी की टूंक पर पहुँचेंगे। यद्यपि इनका निर्वाण यहाँ नहीं हुआ था तथापि लब्धि निधान अतिशय के कारण यहाँ उनकी चरण पादुकाएं विराजमान की गयी हैं। तीर्थ यात्रा प्रारम्भ करते ही इसी टूंक के दर्शन होते हैं।

गौतम स्वामी की इस टूंक में 24 तीर्थंकर और दस गणधर की चरण पादुकाएं विराजमान हैं। इनमें जो श्यामवर्णीय चरण है। वह गौतम स्वामी का है। इन चरणों की प्रतिष्ठा सं. 1825 में हुई थी।

यहाँ से हम कुछ कदम आगे बढ़ाते हैं तो तीर्थंकर श्री कुंथुनाथ की देहरी पर पहुँचते हैं। प्रभु ने यहाँ वैशाख कृष्णा प्रतिपदा को एक हजार मुनियों के साथ मोक्ष प्राप्त किया था। इस टूंक में विराजमान चरणों की प्रतिष्ठा सं. 1825 में हुई थी।

कुंथुनाथ भगवान की टूंक के पास ही श्री ऋषभानन शाश्वत जिन

की टूंक है। पास में ही चन्द्रानन शाश्वत जिन की टूंक है। इसी के निकट पांचवी टूंक तीर्थंकर श्री नमिनाथ की है। यहाँ प्रभु अपने पांच सौ छत्तीस शिष्यों के साथ वैशाख कृष्णा दशमी को निर्वाण प्राप्त हुए थे। चरण पादुका में अंकित शिलालेख से ज्ञात होता है कि जीर्णोद्धार के पश्चात् चरणों की प्रतिष्ठा सं. 1825 में की गयी थी।

यहाँ से आगे हम छठी टूंक पर पहुँचते हैं। यह टूंक तीर्थंकर अरनाथ की है। प्रभु ने यहां एक हजार मुनियों के साथ मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी को निर्वाण प्राप्त किया था। यहाँ विराजित चरण पादुकाएं सं. 1825 माघ शुक्ला 3 को प्रतिष्ठित हुई हैं।

तीर्थंकर अरनाथ की टूंक के दर्शन के पश्चात् हम सातवीं तीर्थंकर श्री मल्लीनाथ की टूंक पर पहुँचते हैं। यहाँ प्रभु ने फाल्गुन शुक्ला द्वादशी को पाँच सौ मुनियों के साथ सिद्धत्व प्राप्त किया था। चरण पर अंकित शिलालेख से ज्ञात होता है कि चरण स्थापना सं. 1825 में हुई थी। इसके आगे आठवीं टूंक तीर्थंकर श्री श्रेयांसनाथ की है। यहाँ पर भी चरण स्थापना सं. 1825 में ही हुई थी। यहाँ भगवान ने एक हजार मुनिवृन्द के साथ श्रावण कृष्णा तृतीया को निर्वाण प्राप्त किया था।

तनिक-सा और आगे बढ़ने पर नवमी टूंक के दर्शन होते हैं। यहाँ नवमे तीर्थंकर श्री सुविधिनाथ ने भाद्रव शुक्ला नवमी को निर्वाण प्राप्त

किया था। प्रभु के साथ एक हजार मुनियों ने भी मोक्ष प्राप्त किया था।

दसवीं टूंक तीर्थंकर श्री पद्मप्रभु की है। यही वह स्थान है जहाँ पद्म प्रभ भगवान ने मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशी को तीन सौ आठ मुनियों के साथ निर्वाण की अकम्प ज्योति जलाई थी। कुछ ही दूरी पर तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रत स्वामी की ग्यारहवीं टूंक है। यहाँ प्रभु ने एक हजार मुनियों के साथ ज्येष्ठ कृष्णा नवमी के दिन परम पद मोक्ष प्राप्त किया था।

मुनिसुव्रत स्वामी के दर्शन कर जैसे ही आप बाहर आएंगे ऊंचे शिखर पर एक प्यारी-सी टूंक दिखाई देगी। इसकी ऊंचाई और दुर्गम मार्ग को देखकर आपके सांस भरने शुरु हो जाएंगे, पर आप स्वयं को हताश न करें, कदम-दर-कदम आगे बढ़ते रहें, प्रभु आपको स्वयं ही अपनी ओर खींच रहे हैं। आप कुछ ही देर में प्रभु की टूंक के पास पहुँच जाएंगे। यह टूंक है तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभु की। सचमुच यहाँ पहुँचकर हृदय इतना प्रफुल्लित हो रहा है कि बस.....। एक अलौकिक आनन्द, अद्‌भुत, अवर्णनीय। ऐसा लगेगा मानो प्रभु प्रसन्न होकर सब कुछ हम पर लुटा रहे हैं। सच में प्रभु कितने दूर आकर बस गये हैं। दूरी इतनी है कि हम देख भी नहीं पाते हैं और निकटता ऐसी है कि प्रभु हमारे घर में है, घट-घट में है। यहाँ तक पहुँचने के लिए कितना कुछ खोना पड़ा, पर जो खोना जानता है वही कुछ पा सकता है। बिना रात के कभी सुबह

नहीं होती।

सूर्य तो मात्र दिन में उजाला करता है। पर अपने चन्द्रप्रभु अनूठे हैं दिन हो या रात, घट-घट में उजाला कर रहे हैं। श्री चन्द्रप्रभु भगवान ने यहाँ भाद्रव कृष्णा सप्तमी के दिन एक हजार साधुओं के साथ निर्वाण प्राप्त किया था। यहाँ प्रभु के श्यामवर्णीय चरण हैं। चरण स्थापना सं. 1825 में हुई थी। यहाँ एक विशाल गुफा भी है। जो पहाड़ की अन्य गुफाओं से अधिक गम्भीर और अनुकूल है।

चन्द्रप्रभु टूंक के दर्शन के पश्चात् आपको पुनः नीचे उतरना पड़ेगा। यहाँ से जल मंदिर 2 कि.मी. है। उतरकर आगे चलने पर आप भगवान श्री आदिनाथ की टूंक के दर्शन करेंगे। यद्यपि प्रभु का निर्वाण तो अष्टापद (हिमालय) तीर्थ पर हुआ था, पर यहाँ दर्शनार्थ उनकी चरण पादुकाएं स्थापित हैं।

यहाँ से कुछ ही दूरी पर चौदहवीं टूंक हैं। इस टूंक में चौदहवें तीर्थंकर श्री अनन्तनाथ के चरण प्रतिष्ठित हैं। चैत्र शुक्ला पंचमी को सात सौ मुनियों के साथ प्रभु ने यहाँ से मोक्ष प्राप्त किया था। पंद्रहवीं टूंक तीर्थंकर श्री शीतलनाथ की है। यहाँ पर वैशाख कृष्णा द्वितीया के दिन प्रभु ने एक हजार मुनियों के साथ मोक्ष लाभ प्राप्त किया था।

सोलहवीं टूंक तीर्थंकर श्री संभवनाथ की है। प्रभु के पुण्य दर्शन से

असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाता है। यहाँ चरण स्थापना सं. 1825 में हुई थी। यहाँ से भगवान ने एक हजार मुनियों के साथ चैत्र शुक्ला पंचमी के दिन मोक्ष प्राप्त किया था। सतरहवीं टूंक भगवान श्री वासुपूज्य की है। यद्यपि भगवान ने चंपापुरी में निर्वाण प्राप्त किया था, पर दर्शनार्थ यहां चरण स्थापित हैं। चरण सं. 1825 में विराजमान हुए थे। अठारहवीं टूंक तीर्थंकर श्री अभिनन्दन स्वामी की है। यहाँ से प्रभु वैशाख शुक्ला अष्टमी को एक हजार मुनियों के साथ मोक्ष पधारे थे। यहाँ भी चरण स्थापना सं. 1825 में हुई थी।

अब आप पहुँच रहे हैं - जलमंदिर। लम्बी दूरी से आप इसे निहारते आ रहे हैं और पुनः-पुनः यहाँ पहुँचने के लिए मन लालायित हुआ है। पवित्र पहाड़ों की गोद में, हरे-भरे विशाल वृक्षों के मध्य निर्मित यह जिन मंदिर सचमुच सृष्टि को भक्तों की अनुपम भेंट है। सम्पूर्ण सम्मेत-शिखर पर्वत पर यही एक ऐसा शिखर युक्त मंदिर है जिसमें तीर्थंकर की प्रतिमाएं विराजमान हैं। यहाँ प्राकृतिक सुषमा तो है ही, साथ ही मंदिर का निर्माण वास्तुविद कलाकारों के हाथों हुआ है। अतः मंदिर की सुन्दरता यहाँ चार-चांद लगा रही है। मंदिर के तीनों ओर प्राकृतिक जल कुंड है इसलिए इसे जल-मंदिर कहते हैं। सचमुच अपूर्व है इसकी सृष्टि, मोहक है इसके चारों ओर का वातावरण। मंदिर जी में मूलनायक

के रूप में विराजमान शामलिया पार्श्वनाथ भगवान की सौम्य-शान्त प्रतिमा अनायास ही मन को भक्ति-भाव से ओत-प्रोत कर देती है ।

इस भव्य जल मंदिर का निर्माण जगत् सेठ श्री खुशालचन्द जी ने करवाया था । उन दिनों यातायात के साधन नहीं थे । अत: निर्माण की सारी सामग्री मधुवन में एकत्रित की जाती थी और फिर हाथियों द्वारा यहाँ तक लायी जाती थी । उस समय मंदिर-निर्माण पर 9,36,000 रुपये व्यय हुए थे। मंदिर जी में विराजमान प्रतिमाओं के नीचे उत्कीर्ण आलेखों से ज्ञात होता है कि शामलिया पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिष्ठा सेठ खुशालचन्द ने करवाई थी और उन्हीं के भाई श्री सुगालचन्द ने संभवनाथ, पार्श्वनाथ, सामला पार्श्वनाथ, अभिनन्दन प्रभु, अजितनाथ प्रभु की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवायी थी ।

जल-मंदिर में यात्रियों के स्नान एवं सेवा-पूजा की उत्तम व्यवस्था है । मंदिर के पार्श्व में ही दो छोटे कुंड हैं । इनसे जल प्राप्त हो जाता है । कहते हैं इनमें से चाहे जितना पानी निकाला जाये पर ये कभी खाली नहीं होते हैं। पूजन-अर्चन के पश्चात् विश्राम करने के लिए दो छोटी धर्मशालाएं भी हैं । यहाँ आप नाश्ता इत्यादि से निवृत्त होकर आगे की यात्रा प्रारम्भ कर दें ।

जल मंदिर से हमें श्री गौतम स्वामी की टूंक की ओर प्रस्थान करना

होगा ताकि पारसनाथ टूंक के दर्शन लाभ प्राप्त हो सके। मार्ग में सर्वप्रथम बीसवीं टूंक श्री शुभ गणधर स्वामी की है। इसके आगे इक्कीसवीं टूंक तीर्थंकर श्री धर्मनाथ भगवान की है। टूंक में स्थापित चरण सन् 1825 में प्रतिष्ठित हैं। यहाँ से श्री धर्मनाथ भगवान ने ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को एक सौ आठ मुनियों के साथ मोक्ष प्राप्त किया था। इसी के आगे मार्ग में श्री वारिषेण शाश्वत जिन की टूंक है। कुछ दूरी पर चौबीसवीं टूंक तीर्थंकर श्री सुमतिनाथ की है। यहाँ चैत्र शुक्ला नवमी को भगवान ने एक हजार मुनियों के साथ निर्वाण प्राप्त किया था। पच्चीसवीं टूंक तीर्थंकर श्री शांतिनाथ की है। यहाँ से प्रभु ने ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी को नौ सौ मुनियों के साथ निर्वाण प्राप्त किया था।

छब्बीसवीं टूंक तीर्थंकर महावीर स्वामी की है। यद्यपि प्रभु की निर्वाण स्थली तो पावापुरी है, पर दर्शनार्थ उनकी चरण पादुकाएं सं. 1924 में यहाँ प्रतिष्ठित की गयी हैं। सत्ताइसवीं टूंक तीर्थंकर श्री सुपार्श्वनाथ भगवान की है। यहाँ से प्रभु पांच सौ मुनियों के साथ फाल्गुन कृष्णा सप्तमी को मोक्ष पधारे थे। इसी के आगे अट्ठाइसवीं टूंक तीर्थंकर श्री विमलनाथ की है। यहाँ से प्रभु ने छ सौ मुनियों के साथ आषाढ़ कृष्णा सप्तमी को निर्वाण प्राप्त किया था। उन्नीसवीं टूंक तीर्थंकर श्री अजितनाथ की है। यहाँ से प्रभु चैत्र शुक्ला पंचमी को मोक्ष पधारे थे। प्रभु के साथ तब मोक्ष प्राप्त करने वाले एक हजार मुनि थे।

तीसवीं टूंक तीर्थंकर नेमिनाथ की है। यहाँ सं. 1934 में प्रभु के चरण स्थापित किये गये थे। यद्यपि नेमिनाथ का निर्वाण कल्याणक गिरनार (गुजरात) पर्वत पर हुआ था, पर दर्शनार्थ यहां चरण स्थापित हैं।

सम्मेत-शिखर महातीर्थ की अन्तिम और सर्वोच्च टूंक भगवान पार्श्वनाथ की टूंक है। दूर से देखते ही मन मोह लेता है यह शिखर। सम्पूर्ण विश्व में इससे ऊंचा जैन मंदिर का कोई भी शिखर नहीं है। इसलिये यह शिखर भगवान पार्श्वनाथ का ही नहीं सम्पूर्ण जैनत्व का शिखर है, जिस पर लहराती ध्वजा विश्व को प्रेम और शांति का संदेश दे रही है। तीर्थ की यात्रा करते हुए श्रद्धा का केन्द्र बिन्दु इसी मंदिर पर टिका रहता है। इसकी ऊंचाई इतनी है कि कभी-कभी तो पूरा मंदिर बादलों से ढक जाता है। इसीलिए इसे मेघाडम्बर टूंक कहा जाता है। मंदिर का शिखर 30 कि.मी. दूर से भी दृष्टिगोचर होता है।

इस तीर्थ का सबसे महत्वपूर्ण अंग ही भगवान पार्श्वनाथ की यह टूंक है। सच तो यह है कि भगवान पार्श्वनाथ के निर्वाण प्राप्त करने के कारण यह तीर्थ विशेष श्रद्धेय हो गया। चाहे शंखेश्वर हो या नागेश्वर, नाकोड़ा हो या सम्मेत-शिखर आखिर महिमा तो सर्वत्र पार्श्वनाथ की ही है। यह तो वह पारस है जो लोहे को न केवल सोना अपितु पारसमय ही बना देता है। पार्श्वनाथ के निर्वाण के कारण ही लोग इस पर्वत को

पारसनाथ हिल कहते हैं। यहाँ के रेल्वे स्टेशन का नाम भी पारसनाथ ही है।

मंदिर जी तक पहुँचने के लिए पचहत्तर सीढ़ियां बनाई गयी हैं। पहली सीढ़ी पर पांव रखते ही मंदिर की विराटता और प्रकृति प्रदत्त सुरम्य वातावरण से हृदय प्रफुल्लित हो जाता है और गौरवान्वित होता है तीर्थंकरों पुरुषों के प्रति, उनकी महिमामयी ज्योति के प्रति। कल्पना की जा सकती है उस क्षण के आनन्द की जब पारसनाथ टूंक के दर्शन की वर्षों की मुरादें पूरी होती हैं।

जैसे-जैसे आप सीढ़ियां चढ़ते जाएंगे प्रभु के प्रति प्रेम उमड़ता जाएगा। मंदिर जी में पहुँचते ही एक विलक्षण भावोद्रेक उमड़ेगा - धन्य हो गये हैं नयन, कृत्कृत्य हो उठी है जिह्वा और नाच उठा है अन्तर्मन। उमड़ने दीजिये अपने भीतर की श्रद्धा को और अपने खुशी के आंसुओं से प्रभु के चरणों का अभिषेक कीजिये। धन्य हैं वे आंसू भी जिनसे प्रभु के श्री चरणों का अभिषेक हुआ है। इन्हीं आंसुओं से मरुदेवी को मोक्ष मिला और चंदनबाला को महावीर मिले।

मंदिर से वापस आने की शीघ्रता न करें। प्रभु के सान्निध्य में बैठें और इस पवित्र वातावरण में अद्भुत शांति प्राप्त करें। सचमुच कितनी मधुर वेला है। तन, मन और आत्मा एक अलौकिक आनन्द में निमग्न हैं।

जब आप मंदिर के बाहर आकर बरामदे से सम्पूर्ण पर्वत को विहंगम दृष्टि से निहारेंगे तो मन कहेगा बस यहीं रहें। ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो हम धरती से बहुत ऊपर आकाश में पहुँच गये हैं, आकाश के पंछी हो गये हैं। इस समय आप समुद्र तल से 4479 फुट ऊपर हैं। सचमुच कितना भव्य, अलौकिक एवं अखण्ड सुषमामय है यहाँ का दृश्य। अपने इस सौभाग्य पर गर्व कीजिये और पुनः आने का संकल्प।

यहाँ से नीचे उतरने से पूर्व मिट्टी के कुछ कण उठाइये और अपने मस्तक पर इस पावन मिट्टी से तिलक कीजिये, क्योंकि यहाँ की धूल भी चंदन-सी है। कण-कण में सिद्धत्व की आभा है।

अब यहाँ से वापसी होती है। मधुवन तक उतार ही है। उतरने में पूरी सावधानी रखिये। उतरने में एक शांत वातावरण है। सूर्य का ताप भी मंद हो रहा है। एक पवित्र शीतल निस्तब्धता छायी है, जो आपको आध्यात्मिक अनुभूतियों में भर रही है। लगभग डेढ़ घंटे में आप तलहटी तक पहुँच जाएंगे। तलहटी में पहुँचकर नमन कीजिये बीस तीर्थंकरों की कर्म विनाशनी प्रज्ज्वलित ज्योति को। फिर भोमिया जी के मंदिर में पहुँच धोक लगाइये निर्विघ्न यात्रा-समापन के लिए।

तलहटी पर विकसित अन्य दर्शनीय स्थल

सम्मेत-शिखर पर्वत की तलहटी को मधुवन कहा जाता है। इसके

चारों ओर मधु बिखेरती विशाल वृक्ष घटाएं हैं, सम्भवत: इसीलिए इसे मधुवन कहा जाता है। चूंकि मधुवन गिरिराज से मात्र एक फर्लांग दूर है अत: यहाँ आकर ऐसा लगता है मानों हम शिखरगिरि की पवित्र छाया में पहुँच गये हैं।

मधुवन का प्राचीनतम उल्लेख सं. 1835 में पंडित दयारुचि गणि रचित सम्मेत-शिखर रास में प्राप्त होता है। उक्त रास से ज्ञात होता है कि उस समय भी मधुवन में एक जिनालय निर्मित हो गया था। सं. 1809 में बादशाह अहमदशाह ने जगत् सेठ महताबराय को मधुवन कोठी भेंट में दी थी।

प्रसन्नता की बात है कि आज मधुवन काफी विकसित हो गया है। यहाँ अनेक दर्शनीय स्थल हैं साथ ही अनेक मंदिरों का भी निर्माण हो गया है। दूर से देखने पर ऐसा लगता है मानों मधुवन में मंदिरों का नगर बसा हो। तीर्थ यात्रा करने के पश्चात् मधुवन के दर्शनीय स्थलों को देखना भी आनन्ददायी रहता है।

श्वेताम्बर कोठी एवं मंदिर :- यह चारों ओर से दुर्ग युक्त विशाल कोठी है। किले में ही विशाल धर्मशाला है। मधुवन की सबसे अधिक प्राचीन धर्मशाला यही है। कोठी में हजारों यात्री एक साथ ठहर सकें ऐसी व्यवस्था है। यात्रियों के लिए भोजनशाला भी यहाँ हैं।

कोठी में प्रवेश करते ही तीर्थ रक्षक श्री भोमिया जी महाराज का

मंदिर है। मंदिर काफी नयनाभिराम है। कोठी में ही ग्यारह मंदिरों के समूह रूप विशाल जिन मंदिर हैं। इसे तलहटी मंदिर भी कहा जा सकता है। इसमें मूलनायक के रूप में श्री शामलिया पार्श्वनाथ भगवान की 90 से.मी. की प्रतिमा विराजमान है। शामलिया पार्श्वनाथ के एक ओर श्री पार्श्वनाथ एवं दूसरी ओर श्री शीतलनाथ है। इसी मंदिर की बाईं ओर श्री पार्श्वनाथ भगवान का मंदिर है। मंदिर की प्रतिष्ठा सं. 1877 में श्री जिनहर्षसूरि के करकमलों से हुई थी। इसी मंदिर के ऊपरी भाग में श्री सुपार्श्वनाथ की चौमुखी प्रतिमाएं विराजमान हैं।

तीसरा मंदिर श्री चन्द्रप्रभ भगवान का है। इसकी प्रतिष्ठा सं. 1888 में श्री जिनचन्द्र सूरि ने करवाई थी।

चौथा मंदिर श्री पार्श्वनाथ भगवान का एवं पाँचवां मंदिर भी श्री पार्श्वनाथ का ही है। छठे मंदिर में बीस जिनपतियों की चरण पादुकाएं विराजमान हैं।

सातवां मंदिर श्री गौड़ी पार्श्वनाथ का है और आठवां मंदिर श्री चिंतामणी पार्श्वनाथ का है। इसमें सं. 1897 में प्रतिष्ठित प्रभु की श्यामवर्णीय प्रतिमा विराजमान है।

नवमा मंदिर श्री सुपार्श्वनाथ भगवान का है और दशवां मंदिर श्री शुभ गणधर स्वामी का। ग्यारहवां मंदिर श्री गौड़ी पार्श्वनाथ का है।

धर्मशाला के पृष्ठ भाग में दादावाड़ी है, जो दर्शनीय है ।

दिगम्बर जैन तेरह पंथ कोठी :- यह दिगम्बर जैन समाज की विशाल धर्मशाला है। इसके मध्य में श्री चन्द्रप्रभु भगवान का भव्य मंदिर है। प्रभु की विशाल प्रतिमा का दर्शन कर हृदय प्रसन्न हो जाता है। इसी मंदिर के तृतीय द्वार के बांयी ओर समवसरण मंदिर निर्मित है ।

समवसरण मंदिर की बांयी ओर भगवान नेमिनाथ की विशाल प्रतिमा है। इसी धर्मशाला में 51 फुट का मान स्तम्भ भी है । मान स्तम्भ में ऊपर-नीचे चौमुख जी रूप में चार-चार प्रतिमाएं विराजमान हैं ।

कोठी में एक और जिन मंदिर है। कहते हैं इसके चौखटे चांदी के हैं। मंदिर जी में भगवान पुष्पदंत की प्रतिमा मनोहारी है। कोठी में निर्मित बावन जिनालय भी दर्शनीय है ।

दिगम्बर जैन बीस पंथी कोठी :- इसमें भी विशाल धर्मशाला निर्मित है। यहाँ तीर्थंकर महावीर का जिनालय दर्शनीय है। उसी के ऊपरी भाग में भ. पुष्पदंत स्वामी का जिनालय है। इस मंदिर के दूसरे छोर पर भगवान आदिनाथ का मंदिर है। इस प्रकार इस कोठी में अनेक जिनालय हैं जिनके दर्शन से आत्मशांति प्राप्त होती है ।

कोठी में ही वाटिका में श्वेत वर्णीय चिंतामणी पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमा का काफी अतिशय है। प्रतिमा की

सौम्यता और स्थान की सुरम्यता बरबस वहाँ कुछ पल बैठने के लिये विवश कर देती है। तेरहपंथ कोठी की तरह यहाँ भी मान स्तम्भ निर्मित है।

चौबीस टूंक :- बीस पंथी कोठी के सामने ही यह जिनालय है। प्रवेश करते ही सर्वप्रथम बाहुबली की 25 फुट की भव्य प्रतिमा है। यहाँ चौबीस तीर्थंकर की चौबीस टूंके बनी हुई हैं। जिनमें ऋषभ से महावीर तक की क्रमश: चौबीस प्रतिमाएं विराजमान हैं। इस मंदिर से मधुवन का विहंगावलोकन किया जा सकता है।

इस मंदिर क्षेत्र में समवसरण मंदिर निर्मित है। सचमुच भव्य है इसकी निर्मिति। विशाल प्रांगण में निर्मित इस समवसरण के चारों ओर प्रवेश द्वार, गंधकुटी निर्मित हैं। अशोक वृक्ष की छाया में विराजमान चतुर्मुखी जिन प्रतिमाएं हमें एक टक निहारने को विवश कर देती हैं। समवसरण में निर्मित देव-देवांगनाएं, पशु-पक्षी की विविध मूर्तियां भी मन लुभाती हैं।

कच्छी भवन :- कच्छी जैन समाज के सौजन्य से इसका निर्माण हुआ है। इसमें बावन जिनालय निर्मित है। मंदिर में अनेक जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाएं विराजमान है। मंदिर का शिखर काफी सुहावना है।

जैन म्यूजियम :- शिखर जी तीर्थ के दर्शनीय स्थलों में यह प्रमुख

है। म्यूजियम का निर्माण गणिवर श्री महिमाप्रभ सागर जी म. की प्रेरणा से श्री जितयशा फाउंडेशन, कलकत्ता ने किया है। जैन म्यूजियम में जैन परम्परा से पिरचित होने के लिए बहुत कुछ निर्मित है। म्यूजियम पूर्णतया सम्प्रदाय निरपेक्ष है। श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानकवासी, तेरहपंथी सबको साथ लेकर सम्पूर्ण जैन-धर्म का प्रतिनिधित्व कर रहा है यह म्यूजियम।

म्यूजियम की परिधि में प्रवेश करते ही आप प्रसन्नचित्त हो जाएंगे। विविध प्रकार के रंगीन फूल और वातावरण को पवित्र करती फूलों की महक और साथ ही आपके बच्चों के लिए आधुनिक झूले म्यूजियम का बाह्य वैभव है। म्यूजियम के प्रथम तल में जैन धर्म से सम्बन्धित विविध सामग्री संकलित है। विशाल हॉल में सामने ही भगवान पार्श्वनाथ की 6 फुट की भव्यतम ध्यानस्थ प्रतिमा विराजमान है। सम्पूर्ण भारत में अपने आप में एक है यह प्रतिमा। चारों ओर दीवारों पर जैन स्थापत्य कला को दर्शाने वाली चित्र प्रदर्शनी लगी है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में यही एकमात्र ऐसा म्यूजियम है जहाँ जैन धर्म पर प्रसारित समस्त डाक टिकिटों का संकलन है।

प्रथम तल में ही प्राचीन हाथी दांत एवं चंदन की कलाकृतियों का संकलन है। कलाकारों ने चंदन एवं हाथी दांत को ऐसा तराशा है कि

आप दांतों तले अंगुली दबा लेंगे। चंदन और हाथी दांत के काजू, दाख, बादाम सब में परमात्म स्वरुप को कलाकारों ने प्रकट किया है। प्राचीन जैन चित्रकला का भी यहाँ संकलन है। इसी प्रकार की अनेक वस्तुएं यहाँ दर्शनार्थ उपलब्ध हैं जिनका निर्माण कलाकारों ने कला के लिए किया है।

म्यूजियम के द्वितीय तल में जैन धर्म के विशेष घटनाक्रम को दर्शाती पचास झांकियां निर्मित हैं। झांकियां इतनी जीवन्त है कि आप दिल दे बैठेंगे। भगवान ऋषभ देव से वर्तमान युग तक समस्त विशिष्ट घटनाएं बिना किसी साम्प्रदायिक भेदभाव के झांकियों में परिकल्पित की गई हैं। चाहे ऋषभदेव हो या महावीर, मानतुंग हो या कुंदकुंद, हेमचन्द्र हो या राजचन्द्र, कुशल गुरुदेव हो या शांति विजय, लोंकाशाह हो या भीखण जी, चंदनबाला हो या विचक्षण श्री जैन-धर्म के सभी प्राण-पुरुष यहां उभरे हैं। इसलिए यह जैन म्यूजियम जैन इतिहास का स्वच्छ दर्पण है। इस दर्पण में जैन धर्म का अतीत प्रतिबिम्बित हुआ है। तभी तो भारत के पूर्व राष्ट्रपति श्री ज्ञानी जैल सिंह ने म्यूजियम को देखकर इसे सम्मेत-शिखर का स्वागत द्वार बताया था।

धर्म मंगल विद्यापीठ :- यहाँ धर्मशाला एवं छात्रावास विद्यालय के अतिरिक्त एक जिन मंदिर भी है, जो दर्शनीय है।

भोमिया भवन :- इसकी स्थापना श्री जैन श्वेताम्बर संघ, कलकत्ता ने की है। यहाँ का जिन मंदिर भी दर्शनीय है।

दिगम्बर मध्यलोक :- यह सम्मेत-शिखर में नवनिर्मित अतिशय दर्शनीय स्थल है। जैन शास्त्रों में वर्णित मध्यलोक को यहाँ कलाकारों द्वारा मूर्त रूप दिया गया है। यहाँ निर्मित हॉल अपने आपमें अद्वितीय है।

अपेक्षित सुविधाएं और मार्गदर्शन

सम्मेत-शिखर तीर्थ बिहार राज्य के गिरडीह जनपद के अन्तर्गत है। निकट का रेल्वे स्टेशन पारसनाथ है जो दिल्ली-हावड़ा लाईन पर दिल्ली से 1086 कि.मी. है। जी.टी. रोड़ (दिल्ली-कलकत्ता रोड़) भी यहाँ से मात्र 20 कि.मी. पर है। सम्मेत-शिखर पारसनाथ स्टेशन से 22 कि.मी. गिरडीह से 23 कि.मी. इसरी से 22 कि.मी. है। गिरडीह एवं पारसनाथ के लिए कलकत्ता से रात्रि में दैनिक रेल सेवा उपलब्ध है। गिरडीह एवं पारसनाथ में श्वेताम्बर-दिगम्बर धर्मशालाएं भी है। धनबाद यहाँ से 60 कि.मी. है जहाँ दिल्ली-हावड़ा की सभी रेलें रुकती हैं।

यात्रियों के विश्राम के लिए शिखर जी में अनेक धर्मशालाएं हैं। इनमें श्वेताम्बर कोठी, दिगम्बर तेरहपंथी एवं बीस पंथी धर्मशालाएं, कच्छी भवन, भोमिया भवन धर्म मंगल विद्यापीठ आदि धर्मशालाओं में निवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था उपलब्ध है।

भारत के अन्य प्रमुख जैन तीर्थ

श्री शत्रुंजय तीर्थ :- (पालीतना) श्री शंत्रुजय तीर्थ जैनों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तीर्थ है। यहाँ संगमरमर के 863 जिन मंदिर होने के कारण इसे मंदिरों का नगर भी कहा जाता है।

जैन शास्त्रानुसार यहाँ असंख्य आत्माओं ने सिद्धत्व प्राप्त किया। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव यहाँ पर 99 पूर्व बार पधारे थे। इस तीर्थ पर 9 टूँके हैं, जो भक्ति और स्थापत्य के अनुठे नमूने हैं। पर्वत के पीछे शत्रुंजय नदी अपनी पवित्रता की अलग शान रखती है।

श्री गिरनार तीर्थ :- जूनागढ़ के पास समुद्र की सतह से लगभग 3100 फुट ऊंचे गिरनार पर्वत पर यह तीर्थ स्थित है। यह जैनों का तो परम पवित्र पूजनीय तीर्थधाम है ही, हिन्दुओं एवं मुसलमानों के लिए भी कम पूजनीय नहीं है। जैन शास्त्रानुसार यहाँ अनेकानेक आत्माएँ मोक्ष सिधारी हैं। बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ ने यहीं दीक्षा ग्रहण की थी, व केवल ज्ञान पाकर यहीं से मोक्ष पधारे। महासती राजीमती (राजुल) ने भी इसी पर्वत पर दीक्षा ली, तपस्या की एवं मुक्त हुई। इस तीर्थधाम में पाँच टूँके हैं। यहाँ की प्राकृतिक छटा और शिल्पकला अत्यन्त सुन्दर एवं दर्शनीय है।

श्री पावापुरी तीर्थ :- जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी की निर्वाणभूमि होने के कारण यह तीर्थ मानव-मात्र के लिए श्रद्धास्पद है। भगवान् की प्रथम एवं अन्तिम देशना इसी पावन भूमि में हुई थी। इन्द्रभूति गौतम का यहीं पर प्रभु से सर्वप्रथम मिलाप हुआ, जिससे प्रभावित होकर उन्होंने प्रभु के पास दीक्षा ली, तब प्रथम गणधर बने। वह धाम 'जल-मंदिर' के रूप में भी प्रसिद्ध है। कमल के सुगन्धित पुष्पों से लबालब भरे विशाल सरोवर के बीच इस मंदिर का दृश्य देखने मात्र से लोगों का मन मुग्ध हो जाता है। चाँदनी रात में इस संगमरमरी तीर्थधाम का दृश्य तो अत्यन्त सुहावना होता हैं।

श्री आबु तीर्थ :- यह तीर्थ समुद्र की सतह से 1220 मीटर ऊंचे अर्बुद गिरि (पर्वत) की गोद में स्थित है, जो अरावली की सबसे ऊंची चोटी है। गर्मी के दिनों में हमेशा सहस्रों पर्यटक देश-विदेश से यहाँ आते हैं।

मन्त्री विमलशाह और वस्तुपाल-तेजपाल द्वारा निर्मापित विश्व-विख्यात 'देलवाड़ा' का मन्दिर यहीं निर्मित है। यहाँ के विमलसही व लावण्यवसही मन्दिरों में संगमरमर के पाषाण पर की गई शिल्पकृतियाँ अजोड़, अनुपम और अति आकर्षक हैं।

श्री श्रवणबेलगोला तीर्थ :- यह कर्नाटक राज्य का प्रसिद्ध जैन तीर्थ एवं पर्यटन स्थल है। यहाँ की भगवान् बाहुबली की 57 फीट ऊंची विशाल प्राचीन प्रतिमा, कला की दृष्टि से भारतीय शिल्पकला का एक सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। इसे कला-जगत् का आश्चर्य कहा जा सकता है। इस भव्य प्रतिमा का सौम्य, शान्त,

गम्भीर रूप अनायास ही मन को भक्ति-भाव से ओत-प्रोत कर देता है।

श्री शंखेश्वर तीर्थ :- भगवान् पार्श्वनाथ के प्रसिद्ध एवं प्रमुख तीर्थों में यह एक है। यहाँ की पार्श्व-प्रभु की प्रतिमा अत्यन्त सुन्दर और प्रभावशाली है। श्रीकृष्ण व जरासंध की लड़ाई के समय इस प्रभु-प्रतिमा का स्नात्र-जल सेना पर छिड़काने से उपद्रव शान्त होने का वृतान्त प्रचलित है। यहाँ विशाल परकोटे के मध्य भाग में सुन्दर विमान जैसा शिखरबद्ध बावन जिनालय स्थित है। समस्त जैन समाज में शंखेश्वर पार्श्वनाथ के प्रति अटूट श्रद्धा है।

श्री राणकपुर तीर्थ :- राजस्थान में अरावली गिरि-माला की पहाड़ियों के बीच यह तीर्थ स्थित है। इस मंदिर की कला बड़ी जीवन्त है। यह नलिनी गुल्म विमान की प्रतिकृति के रूप में निर्मित है।

मन्दिर की अनूठी विशेषता उसकी विभिन्न कलायुक्त स्तम्भावली है। कुल 1444 स्तम्भ माने जाते हैं पर उन्हें गिनना हर किसी के बलबूते की बात नहीं है। शिल्पियों ने स्तम्भों की सजावट ऐसे व्यवस्थित ढंग से की है कि मंदिर के किसी भी कोने में खड़ा भक्त अपने आराध्य का दर्शन कर सकता है।

श्री नाकोड़ा तीर्थ :- यह तीर्थ राजस्थान में बालोतरा से 10 कि.मी. दूर जंगल में पर्वत-माला के बीच शोभायमान है। यहाँ पर भगवान् पार्श्वनाथ की प्राचीन प्रतिमा सुन्दर, भव्य एवं अत्यन्त चमत्कारी है। यहाँ के अधिष्ठायक श्री भैरवजी महाराज साक्षात् हैं व उनके चमत्कार जग-विख्यात हैं। जैनों के साथ अजैनों के लिए भी यह तीर्थ अत्यन्त आकर्षण एवं श्रद्धा का केन्द्र हैं।

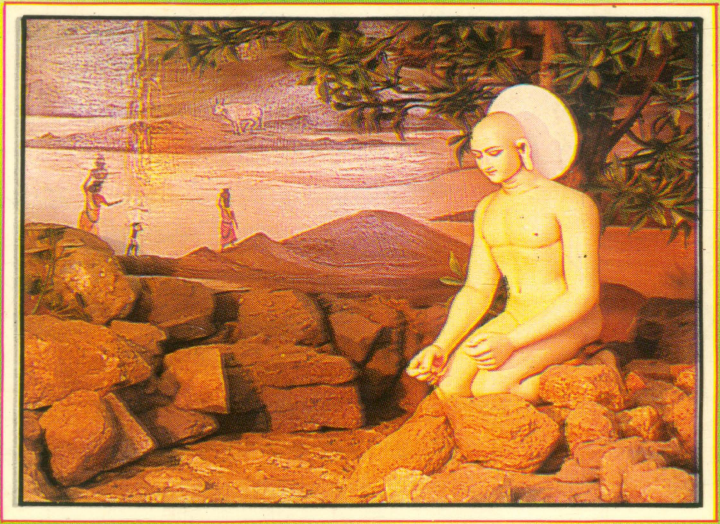

जैन म्यूजियम, शिखरजी
में निर्मित मनोरम झांकी